International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 16-08-2021, Accepted: 01-09-2021, Published: 17-09-2021
Volume 3, Issue 3, 2021, Page No. 33-36

आदिवासी जीवन के दस्तावेज़: नारायण के मलयालम उपन्यास

डॉ. उषा नायर
असोसियेट प्रोफसर, हिन्दी विभाग, संट तेरेसास कॉलेज, (स्वायत्त), एरणाकुलम, केरल, भारत

सारांश

आदिवासियों के मलअरयार समुदाय की मलयालम साहित्य-जगत में जो विशेष पहचान है, उसका श्रेय जाता है इसी समुदाय के सदस्य, विख्यात उपन्यासकार श्री नारायण को। साहित्य जगत की दृष्टि में आदिवासियों की मूलरूढ छवि को नारायण संशोधित करना चाहते हैं और यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि वह प्रकृति के साथ समरसता में जीने वाला ऐसा कठिन परिश्रमी जन समुदाय है जिसके स्पष्ट जीवन मूल्य और सांस्कृतिक वैशिष्ट्य हैं। नारायण ने समुदाय-वशेष की जीवन शाली, रीति रिवाज़, सांस्कृतिक संकट, वन अधिकारियों और शहरी लोगों द्वारा उद्धार के नाम पर किये जा रहे शोषण आदि का सविस्तार चित्रण किया है। आदिवासियों के अधिकांश रीति-रिवाज़ मनुष्य के जीवन-चक्र के महत्वपूर्ण पडावों से जुडे हैं। जन्म, विवाह, दाह संस्कार से जुडी उनकी रस्में निराली हैं। प्रकृति और देवता उनके दैनिक जीवन में वे ऐसे घुल-मुल गये कि उनका प्रखंडीकरण संभव नहीं है। वे अपने देवताओं में क्रोध, निराशा, खुशी, संतोष, दुःख जैसे मानव सहज, गुणों को आरोपित करते हैं। आदिवासियों की पहचान उनके परिवेश से अभिन्न है और उनका वजूद ज़मीन, पहाडों, पानी, सूरज, पेडों और सहजीवियों के साथ गहराई से जुडा है। ज़मीन से उन्हें बेदखल किया जा सकता है, परिष्कृत समाज की यह व्यवस्था उनकी समझ से बाहर है। बाहरी दुनिया से लेन-देन कभी भी उनके हित में नहीं हो पाता क्योंकि तथाकथित परिष्कृत समाज की चुतराई का सामना आदिवासी अपनी सरल, अनपढ बुद्धि के सहारे नहीं कर पाते।

मूलशब्दः आदिवासी जीवन, परिश्रमी जन समुदाय, सांस्कृतिक वैशिष्ट्य, रोज़गार, सांस्कृतिक मान्यतायें, चिकित्सा विधियाँ

प्रस्तावना

केरल में आदिवासियों के उनचालीस समुदाय हैं। इनमें मलअरयार समुदाय की मलयालम साहित्य-जगत में जो विशेष पहचान है, उसका श्रेय जाता है इसी समुदाय के सदस्य, विख्यात उपन्यासकार श्री नारायण को। साहित्य जगत की दृष्टि में आदिवासियों की मूलरूढ छवि को नारायण संशोधित करना चाहते हैं और यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि वह प्रकृति के साथ समरसता में जीने वाला ऐसा कठिन परिश्रमी जन समुदाय है जिसके स्पष्ट जीवन मूल्य और सांस्कृतिक वैशिष्ट्य हैं।

नारायण को अपने पहले ही उपन्यास "कोच्चरेती" के लिये केरल साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था और आलोचकों ने उसे, वर्ष 1998 के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास में रूप में मान्यता दी थी। इस उपन्यास का अनुवाद

हिन्दी अंग्रेज़ी और अन्य अ#ेक भारतीय भाषाओं में हो चुका है। इसका हिन्दी अनुवाद "पहाडिन" नाम से रमणिका गुप्ता फौन्डेशन की पत्रिका "युद्धरत आम आदमी" में प्रकाशित हुआ था। इसमें कोच्चुरामन-कुन्जीपेन दंपतियों के भाग्य और दुर्भाग्य की कथा के माध्यम से लेखक आदिवासियों के मलअरयार समूह के जीवन के उतार-चढावों की गाथा सुनाते हैं। खतरों से भरी उनकी ज़िन्दगी में कालान्तर में शिक्षा की रोशनी का प्रसार होता है। इसी रोशनी में उनकी नई पीढ़ी प्रगतिशील सोच के साथ आगे बढ़ रही है। "ऊरालिक्कुडि" उनका दूसरा उपन्यास है जो कोम्बोडिन्जी गाँव के ऊरालि आदिवासी समुदाय के जीवन पर केन्द्रित है। वे लोग खेतीहर हैं और घने जंगलों को काटकर उन स्थानों को खेती योग्य बनाते हैं। जहाँ जंगल न हो, उन स्थानों पर अरालि कभी नहीं बसते। वे ज़मीन के उपजाऊपन को किसी भी तरह का नुकसान नहीं पहुँचाते। "चेन्गारुम कूट्टालुम" उनकी तीसरी औपन्यासिक कृति है जो मुतुवान आदिवासी समुदाय के जीवन पर प्रकाश डालती है। उनके आर्थिक और सामाजिक उद्धार के घोषित लक्ष्य के साथ परिष्कृत समाज उनके जीवन में हस्तक्षेप करता है। वे आदिवासी बडी आसानी से उन तथाकथित परिष्कृतों के बिछाये जाल में फँस जाते हैं। शहरी लोगों के अपराधों की सज़ा भुगतना उनकी नियति बन जाती है। हाथी का शिकार हो या अफीम की खेती अन्यथा स्त्री का अपहरण व बलात्कार; जुर्म कोई भी हो, बडी आसामी से किसी भी मुतुवान के सिर पर मढ़ दिया जाता है। तीनों ही उपन्यासों में नारायण ने समुदाय-वशेष की जीवन शाली, रीति रिवाज़, सांस्कृतिक संकट, वन अधिकारियों और शहरी लोगों द्वारा उद्धार के नाम पर किये जा रहे शोषण आदि का सविस्तार चित्रण किया है।

आदिवासियों का प्रमुख रोज़गार खेती है। पहाडी प्रदेशों की कठोर भूमि पर काम आसान नहीं होता। उसपर दो-तीन बार अनाज की खेती करके वे उसे छोड़ देते हैं। उनका आहार मुख्यत:दान की खेती पर और जंगलों में सुलभ कंद-मूलों पर निर्भर होता है मछली पकडकर और शिकार करके ही वे अपनी ज़रूरतों की पूर्ति करते हैं। जो अनाज या कंदमूल उनकी आवश्यकता से अधिक होता है, त उसका वे आपस में विनिमय करते हैं। इस प्रकार समुदाय की प्राय: सभी ज़रूरतों की पूर्ति समुदाय के भीतर ही हो जाती है। इस तरह एक आत्मनिर्भर अर्थ-व्यवस्था कायम हो जाती है। बाहरी दुनिया से लेन-देन कभी भी उनके हित में नहीं हो पाता क्योंकि तथाकथित परिष्कृत समाज की चुतराई का सामना आदिवासी अपनी सरल, अनपढ बुद्धि के सहारे नहीं कर पाते।

किसी भी समुदाय के रीति-रिवाज़ उनकी वे सांस्कृतिक मान्यतायें है जिनका पीढी दर पीढी पालन होता है। वे प्रतीकात्मक होती है; उन्हें भौतिक जीवन में ही अभिव्यक्ति मिलती है किन्तु समुदाय की विशिष्ट पहचान बनाने में वे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। आदिवासियों के अधिकांश रीति-रिवाज़ मनुष्य के जीवन-चक्र के महत्वपूर्ण पडावों से जुडे हैं। जन्म, विवाह, दाह संस्कार से जुडी उनकी रस्में निराली हैं। उनके बीच जाति प्रथा अत्यंत सशक्त है। केरल में प्रत्येक जाति की अनेक उपजातियाँ भी है। नारायण के मलअरयार जाति की पाँच उपजातियाँ "इल्लम" कहलाती हैं। "कोच्चरेती" में इन इल्लमों का नामोल्लेख मिलता है - वालयिल्लम, पुतानियिल्लम, मुतलक्काडिल्लम, नेल्लीपुलीइल्लम और चूकिल्लम। इनमें चूकिल्लम के सदस्य वे होते हैं जिन्हें दुराचरण के कारण जात बाहर किया जा चुका है। विवाह, समान दर्जे के इल्लामों के स्त्री-पुरुष के बीच ही होते हैं। उसमें पुरुष की इच्छा और बुजर्गों की राय महत्वपूर्म होती है। स्त्रियों का इच्छा-अनिच्छा का कोई महत्व नहीं होता। विजातीय विवाह वर्जित हैं।

कुल की मान-मर्यादा का पालन पूर्णत: स्त्री का उत्तरदायित्व माना जाता है इसलिये नियम उसके लिये

बहुत कठोर होते हैं। दूसरी जाति के पुरुष के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करने वाली कुँवारी स्त्री का अपराध अक्षम्य है, फिर चाहे उसका बलात्कार ही क्यों न हुआ हो। ऐसी स्त्री को पच्छर मारकर या जिन्दा जलाकर मृत्यु दण्ड दिया जाता है। आदिवासियों के घर "पन्ता" कहलाते हैं जिससे थोडी दूरी पर एक झोंपडी भी बनाई जाती है जिसे "ईट्टप्पेरा" कहते हैं। स्त्रियाँ मासिक धर्म के समय यहीं पर सात दिन बिताती है और परिवार के अन्य लोगों, यहाँ तक कि अन्य स्त्रियों से भी संपर्क वर्जित है। प्रसव पीडा शुरु होने पर गर्भवती स्त्री भी इस ईट्टप्पेरा के भीतर प्रवेश करती है और बच्चे को जनम के बाद छप्पन दिन वहीं गुज़रती है। "अरुलिक्कुडि" में वेलुप्पी ऐसी एक पात्र है जिसके गर्भस्थ शिशु का पितृत्व उसका शराबी पति स्वीकार नहीं करता। अरुलियों के रिवाज़ों के अनुरूप उसे तुरंत जात-बाहर किया जाता है। उसके माता-पिता भी उसके साथ फिर कोई संबंध नहीं रखते। जब प्रसव पीडा शु डिग्री होती है तो ईट्टप्पेरा के अंदर छोड दिया जाता है। उसकी सहायता न कोई दाई करती है, न कोई अन्य स्त्री। स्त्रियाँ उस ईट्टप्पेरा की ओर कान लगाये आतंकित हृदय के साथ इंतज़ार करती है। क्योंकि वे जानती है कि भविष्य में उनके साथ भी यही हो सकता है। पुरुष यदि अपनी पत्नी पर विवाहेतर संबंध का आरोप लगाता है तो उन्हें लफाई का मौका भी नहीं दिया जाता है। वेलुप्पी जब प्रसव के दौरान दम तोड देती है तो उसकी संतान फिर अछूत नहीं होती।

प्रकृति और देवता आदिवासियों के जीवन के अभिन्न अंग हैं। उनके दैनिक जीवन में वे ऐसे घुल-मुल गये कि उनका प्रखंडीकरण संभव नहीं है। मरुता, चातन, पुलियाम्बुल्ली तंबुरान, घंटाकर्णन और गणपति की उपासना प्राय: सभी आदिवासी समुदायों में होती है। वे अपने देवताओं में क्रोध, निराशा, खुशी, संतोष, दुःख जैसे मानव सहज, गुणों को आरोपित करते हैं। भोग के संबंध में भी आम-इंसानों की तरह उनकी पसंद नापसंद है। गणपति को नारियल और केले चढाते हैं, पुलियम्बुल्ली को पोहे, गुड और केले पसंद है तो चातन को भुना हुआ चावल का आटा और पान प्रिय है, तो वहीं घंटाकर्णन को शराब के साथ मुर्गे का माँस। "कोच्चरेत्ती" में मलअरयार लोगों का विश्वास है कि उनके देवता उनके जीवन में आद्यंत शामिल है,उनके आस-पास सदैव रहते हैं और उनपर करीब से नज़र रखते हैं। जीवन में जो भी सुख-दुख मिलते हैं, वे उन्हीं की प्रसन्नता और क्रोध के परिणाम है। फिर चाहे वह अच्छी खेती, स्वस्थ संतान आदि से जुडी खुशी हो अथवा प्राकृतिक विपदा, चेचक जैसी महामारी के कारण उत्पन्न दुख।

चिकित्सा विधियाँ भी ईश्वर और प्रकृति से समान रूप से जुडी है। "कोच्चरेत्ती" में इट्टयाडी उस पीढी का प्रतीक है जो इलाज के लिये झाड-फूँक का रास्ता अपनाती है। दूसरी ओर उसका दामाद कोच्चुरामन है जो बिना औपचारिक शिक्षा के, प्रकृति की ज़ी-बूटियों की अनन्त संभावनाओं को पहचानता है। वह कितनों को रोगमुक्त कर देता है। इन पीढियों की सोच में जो भेद लक्षित होता है वह परंपरागत सोच के कालानुसार परिवर्तन का सूचक है।

निष्कर्ष

नारायण वर्तमान की भूमि पर पैर जमाकर अतीत की सांस्कृतिक विशेषताओं पर प्रकाश डालते हैं। उन्होंने आदिवासियों के आर्थिक शोषण, धर्म परिवर्तन, सांस्कृतिक ह्रास, आरक्षण की व्यवस्था की कमज़ोरियाँ आदि सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला है। आदिवासियों की पहचान उनके परिवेश से अभिन्न है और उनका वजूद ज़मीन, पहाडों, पानी, सूरज, पेडों और सहजीवियों के साथ गहराई से जुडा है। ज़मीन उनके लिये बिकाऊ वस्तु नहीं है। उसे वे अपनी संपत्ति नहीं मानते किन्तु उसपर अपना पूरा अधिकार मानते हैं। उस ज़मीन से उन्हें बेदखल किया जा सकता है, परिष्कृत समाज की

यह व्यवस्था उनकी समझ से बाहर है। उनकी रचनायें इस बात की माँग करती है कि भौगोलिक दृष्टि और विकास के नज़रिये से जो आदिवासी समुदाय हाशिये पर है उसके विलक्षण सांस्कृतिक वैशिष्य का वर्चस्ववादी सभ्य समाज पहचाने।

संदर्भ सूची

1. कोचरेती. नारायण. कोट्टायम: डी सी बुक्स, 1998.
2. उरालीक्कुड. नारायण. साहित्य प्रवर्तक को -ऑपरेटिव सोसाइटी २००४
3. आदिवासी विकास से विस्थापन: रमणिका गुप्ता. राधाकृष्ण प्रकाशन २०१५
4. आदिवासी कौन. रमणिका गुप्ता. राधाकृष्ण प्रकाशन, 2008
5. Pillai, Meena T. “Translating the Nation, Translating the Subaltern” Anukriti.n.d.Web.